

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 7 अध्याय 2: हिरण्यकशिपु ने दिति का शोक दूर किया

13 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



एक असुर-राज जिसने अभी-अभी प्रतिशोध की अग्नि से संसार को भस्म करने की प्रतिज्ञा की है, उसी क्षण अपनी रोती हुई माता की ओर मुड़कर अविनाशी आत्मा के विषय में ऐसे मर्मभेदी ज्ञान की बात कहता है कि उसका शोक ही विलीन हो जाता है। भागवत में एक अत्याचारी भी सत्य का उच्चारण कर सकता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्जम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में नारद ने प्रकट किया कि हिरण्यकशिपु तथा उसका भाई हिरण्याक्ष वस्तुतः शापवश गिरे हुए वैकुण्ठ के द्वारपाल जय और विजय थे। यह अध्याय हिरण्याक्ष की मृत्यु के तुरन्त पश्चात् के कठोर क्षणों से आरम्भ होता है, और इसमें एक चौंकाने वाला विरोधाभास छिपा है: वही जिह्वा जो धर्मात्माओं के विनाश की शपथ लेती है, वही अविनाशी आत्मा पर शास्त्रों में कहीं भी पाई जाने वाली सर्वोच्च शिक्षाओं में से एक भी देती है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 7 (सप्तम स्कन्ध)
- अध्याय: 2
- अध्याय-शीर्षक: हिरण्यकशिपु ने माता का शोक दूर किया (दिति का शोक-निवारण)
- मुख्य वक्ता: देवर्षि नारद (युधिष्ठिर को कथा सुनाते हुए); उनकी कथा के भीतर, हिरण्यकशिपु; तथा हिरण्यकशिपु के कथन के भीतर, यमराज (बालक के रूप में)
- मुख्य श्रोता: सम्राट युधिष्ठिर; कथा के भीतर, दिति, विधवा पुत्रवधू तथा हिरण्याक्ष के पुत्र; और कथा में, राजा सुयज्ञ की शोकाकुल रानियाँ
- मुख्य स्थान: हिरण्यकशिपु का दरबार तथा गृह; स्मरण की गई कथा में, उशीनर देश में राजा सुयज्ञ का रणक्षेत्र तथा महल
- मुख्य विषय-वस्तु: हिरण्यकशिपु की शोकजनित प्रतिशोध-प्रतिज्ञा तथा पृथ्वी का विनाश; और अपने परिवार को इस शिक्षा द्वारा सान्त्वना कि आत्मा शाश्वत है और शोक “मैं” तथा “मेरा” के भ्रम से उत्पन्न होता है
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 7, अध्याय 2, श्लोक 1–61
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

एक भाई की मृत्यु और एक असुर की प्रतिज्ञा

नारद युधिष्ठिर को अपनी कथा जारी रखते हैं। जब हिरण्यकशिपु को ज्ञात हुआ कि उसके प्रिय छोटे भाई हिरण्याक्ष का वध वराह-रूप श्रीहरि ने कर दिया, तो वह वेदना तथा क्रोध से अभिभूत हो गया। दाँत पीसते और होंठ चबाते हुए, उसकी आँखें इतनी जलीं कि आकाश भी धुँधला-सा दिखने लगा; उसने अपना त्रिशूल उठाया और अपने दरबार के एकत्रित दानवों तथा दैत्यों को सम्बोधित किया। उसने अपने भयंकर सेनापतियों का एक-एक कर नाम लिया और अपने भाई का प्रतिशोध लेने की शपथ ली — विष्णु का शिरच्छेद करने की प्रतिज्ञा की, जिसे वह एक चंचल, पक्षपाती देवता कहकर तिरस्कृत करता था जो केवल अपने उपासक का पक्ष लेता है।

किन्तु हिरण्यकशिपु का क्रोध असुर-स्वभाव की एक परिचित भ्रान्ति पर टिका है। वह विष्णु पर पक्षपात का आरोप लगाता है, मानो भगवान् किसी चंचल बालक की भाँति उसी का पक्ष लें जो उनकी चाटुकारिता करे। वास्तव में भगवान् प्रत्येक जीव के प्रति समभाव रखते हैं, ठीक वैसे ही जैसे एक न्यायप्रिय शासन प्रत्येक नागरिक के प्रति समभाव रखता है — शासक भेदभाव नहीं करता, अपितु प्रत्येक नागरिक का अपना आचरण ही कानून के फल को निर्धारित करता है। देवता इसलिए विजयी होते हैं क्योंकि वे भगवान् के वचन का निष्ठापूर्वक पालन करते हैं; असुर, यद्यपि जानते हैं कि विष्णु ही परमेश्वर हैं, उनके आदेश की अवहेलना करते हैं और इसलिए अपनी ही अवज्ञा का फल भोगते हैं। फिर भी

यहाँ एक गहन करुणा छिपी है: क्योंकि हिरण्यकशिपु का मन, चाहे कितनी भी दुर्भावना से क्यों न हो, दिन-रात विष्णु में ही स्थिर रहता है, वह तल्लीनता सर्वथा व्यर्थ नहीं जाती, क्योंकि ऐसे असुर प्रायः मृत्यु के समय भगवान् में लीन होकर मुक्ति पा लेते हैं। जब वैर का लक्ष्य स्वयं परमेश्वर हों, तो वह भी सर्वथा निष्फल नहीं रहता (श्लोक ६-८)।

भगवान् के विरुद्ध प्रतिज्ञा से भी अधिक भयावह उसका निर्दोषों के विरुद्ध आदेश था। उसने तर्क किया कि चूँकि विष्णु यज्ञ तथा धर्म से पुष्ट होते हैं, अतः उन पर प्रहार का उपाय पृथ्वी पर धर्म का नाश करना है। उसने अपने असुरों को आदेश दिया कि वे संसार पर टूट पड़ें और हर उस स्थान को उजाड़ दें जहाँ ब्राह्मण यज्ञ करते हैं, जहाँ गौएँ पाली जाती हैं, जहाँ वेदों का अध्ययन होता है, और जहाँ दान तथा व्रत का पालन होता है।



अपने भाई की मृत्यु के शोक तथा क्रोध से अभिभूत हिरण्यकशिपु अपने असुर-दरबार में त्रिशूल उठाकर भगवान् विष्णु से प्रतिशोध तथा पृथ्वी पर धर्म के विनाश की प्रतिज्ञा करता है (SB 7.2.1-12)।

घरे में पृथ्वी

अपने स्वामी की आज्ञा शिरोधार्य कर असुर संसार पर टूट पड़े। उन्होंने नगर तथा गाँव, गौशालाएँ तथा उद्यान, आश्रम तथा कृषक-बस्तियाँ जला दीं; पुल, प्राचीर तथा नगर-द्वार ध्वस्त कर दिए; फल देने वाले वृक्ष काट डाले जिन पर लोगों की जीविका निर्भर थी, और घरों में आग लगा दी। जब लोग बार-बार इस अत्याचार से पीड़ित हुए, तो देवताओं ने भी स्वर्ग छोड़ दिया और इस विनाश को देखते तथा आगे क्या किया जाए इस पर विचार करते हुए पृथ्वी पर अदृश्य विचरण करने लगे। यह एक ऐसे संसार का धूमिल चित्र है जिसमें क्रूरता को खुली छूट मिल गई है — वह आवश्यक पृष्ठभूमि जिसके सामने शीघ्र ही प्रह्लाद की निर्भय भक्ति और भी उज्ज्वल होकर चमकेगी।



हिरण्यकशिपु की आज्ञा से असुर पृथ्वी को उजाड़ते हैं, आश्रम तथा गाँव जलाते और यज्ञ तथा धर्म को भंग करते हैं, जबकि देवता स्वर्ग से अदृश्य होकर हट जाते हैं (SB 7.2.13-16)।

सान्त्वना के वचन: आत्मा कभी नहीं मरती

फिर अध्याय अप्रत्याशित रूप से विनाश से सान्त्वना की ओर मुड़ता है। अपने मृत भाई के लिए जलांजलि देने के पश्चात् भी हिरण्यकशिपु स्वयं दुःखी रहा — और उसने अपनी माता दिति, विधवा भाभी रुषाभानु तथा भतीजों को शोक में डूबा पाया। समय की माँग को जानते हुए उसने उनसे कोमलता से कहा। शत्रु के सम्मुख वीर की मृत्यु, उसने उनसे कहा, प्रशंसनीय है, शोक के योग्य नहीं। इस संसार में प्रियजनों का मिलना, उसने कहा, मार्ग के किसी विश्राम-गृह में जल-कुण्ड के पास संयोगवश मिलते यात्रियों के समान है: भाग्य द्वारा एकत्र किए गए, वे अपने पूर्व-कर्मों के अनुसार पुनः भाग्य द्वारा पृथक् कर दिए जाते हैं।

तत्पश्चात् उसने वे वचन कहे जो किसी ऋषि के मुख से निकल सकते थे:

नित्य आत्माव्ययः शुद्धः सर्वगः सर्ववित्परः ।

धत्तेऽसावात्मनो लिङ्गं मायया विसृजन्गुणान् ॥ २२ ॥

nitya ātmāvyayaḥ śuddhaḥ sarvagaḥ sarva-vit paraḥ dhatte 'sāv ātmano liṅgaṁ māyayā visṛjan guṇān

अर्थ: आत्मा नित्य, अविनाशी, शुद्ध, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ तथा परे है; फिर भी अपनी ही माया-शक्ति से वह एक सूक्ष्म देह-रूप (लिंग) धारण करती है और प्रकृति के गुणों का विस्तार करती है। (SB 7.2.22)

जैसे बहती धारा में प्रतिबिम्बित वृक्ष हिलते-से प्रतीत होते हैं, और घूमती आँखों वाले को पृथ्वी घूमती-सी लगती है, वैसे ही, हिरण्यकशिपु ने समझाया, जब मन प्रकृति के गुणों से विक्षुब्ध होता है, तो अचल आत्मा भी देह के परिवर्तनों में भाग लेती-सी प्रतीत होती है। अविनाशी आत्मा को नश्वर देह मान लेना ही समस्त शोक का मूल है — इसी से राग-द्वेष, जन्म-मृत्यु तथा हर प्रकार का दुःख उपजता है। इसे स्पष्ट करने के लिए

उसने एक प्राचीन कथा सुनाई।

राजा सुयज्ञ की कथा

उसने कहा कि उशीनर देश में एक बार सुयज्ञ नामक एक प्रतापी राजा था, जो युद्ध में अपने शत्रुओं द्वारा मारा गया। उसके परिजन रणभूमि में उसके गिरे हुए शरीर के चारों ओर एकत्र हो गए, उसके आभूषण बिखरे तथा कवच टूटे पड़े थे। उसकी रानियाँ, अपने स्वामी को ऐसी दशा में देखकर, छाती पीटते हुए रोती हुई उसके चरणों में गिर पड़ीं और उन्हें अपने आँसुओं से भिगो दिया। “हम अपने प्रियतम मित्र के बिना कैसे जिएँगी?” वे विलाप करती रहीं, यहाँ तक कि उसका शरीर दाह-संस्कार के लिए ले जाने भी न देतीं — जब तक कि उनके विलाप के बीच सूर्य स्वयं क्षितिज के नीचे न डूब गया।



उशीनर देश की रणभूमि में राजा सुयज्ञ की विधवा रानियाँ अपने वध किए गए पति के चारों ओर शोक में एकत्र हैं, और उसे दाह-संस्कार के लिए ले जाने नहीं देतीं (SB 7.2.28-35)।

यमराज बालक के रूप में प्रकट होते हैं

राजा के परिजनों का अनन्त विलाप सुनकर मृत्यु के अधिपति यमराज उनके बीच एक छोटे बालक के रूप में प्रकट हुए और कोमलता से उनके शोक को धिक्कारा।

श्रीयम उवाच

अहो अमीषां वयसाधिकानां

विपश्यतां लोकविधिं विमोहः ।

यत्रागतस्तत्र गतं मनुष्यं

स्वयं सधर्मा अपि शोचन्त्यपार्थम् ॥ ३७ ॥

śrī-yama uvāca aho amīṣāṁ vayasādhikānāṁ vipaśyatāṁ loka-vidhiṁ vimohaḥ yatrāgatas tatra gataṁ manuṣyaṁ svayaṁ sadharmā api śocanty apārtham

अर्थ: यमराज ने कहा: अहो, इन मुझसे आयु में बड़े जनों का मोह! ये संसार की रीति को स्पष्ट देखते हुए भी उस मनुष्य के लिए व्यर्थ शोक करते हैं जो केवल उसी स्रोत में लौट गया है जहाँ से वह आया था — और यह तब, जब स्वयं ये भी उसी नश्वर स्वभाव के हैं! (SB 7.2.37)

बालक ने आगे कहा कि सच्चा रक्षक तो केवल भगवान् हैं — जो असहाय शिशु की माता के गर्भ में भी रक्षा करते हैं; भाग्य से रक्षित आत्मा वन में परित्यक्त होकर भी जीवित रहती है, जबकि जिसका समय आ गया, वह घर में सुरक्षित रहकर भी नष्ट हो जाता है। देह कर्म के नियम से आती-जाती है, किन्तु भीतर बसा आत्मा अछूता रहता है — देह, इन्द्रियों तथा प्राण से भी भिन्न, जैसे काष्ठ में बसी अग्नि उससे भिन्न है। जिसे तुम सुयज्ञ कहते हो, यमराज ने कहा, वह इस देह में न कभी श्रोता था न वक्ता; भीतर का द्रष्टा स्वयं कभी देखा नहीं जा सकता।

दो पक्षियों की कथा

शिक्षा को हृदय तक पहुँचाने के लिए यमराज ने एक और कथा सुनाई। एक व्याध, जो मानो पक्षियों के लिए साक्षात् मृत्यु के रूप में रचा गया था, एक बार वन में अपना जाल फैलाकर बैठा। वहाँ कुलिंग पक्षियों का एक जोड़ा रहता था, और मादा अकस्मात् जाल में फँस गई। नर पक्षी, अपनी संगिनी को बचाने में असमर्थ, उस पर करुण विलाप करने लगा — उसके कष्ट पर शोक करता, अपने टूटे जीवन पर विलाप करता, और चिन्ता करता कि उनके अपंख शिशुओं को कौन खिलाएगा। और जब वह विलाप कर रहा था, अपने ही संकट से अनजान, वही व्याध निकट सरककर उसे भी बाण से बींध गया। “ठीक इसी प्रकार,” यमराज ने रानियों से कहा, “तुम मूढ़ स्त्रियाँ, अपने पति का शोक करती और अपनी मृत्यु न देखती, सैकड़ों वर्षों में भी उसे वापस नहीं पाओगी।”



बालक-रूप यमराज शोकाकुल रानियों को दो कुलिंग पक्षियों तथा व्याध की कथा से सान्त्वना देते हैं — शोक की व्यर्थता तथा मृत्यु की अनिवार्यता की एक शिक्षा (SB 7.2.36-57)।

शोक सत्य में विलीन

बालक के उपदेश को सुनकर सुयज्ञ के परिजन आश्चर्यचकित रह गए और समस्त संसार को नश्वर तथा असत्य जान लिया; और यमराज अपनी शिक्षा देकर वहीं अन्तर्धान हो गए। हिरण्यकशिपु ने इस शिक्षा को एक विलक्षण निष्कर्ष से समाप्त किया:

अतः शोचत मा यूयं परं चात्मानमेव वा ।
क आत्मा कः परो वात्र स्वीयः पारक्य एव वा ।
स्वपराभिनिवेशेन विनाज्ञानेन देहिनाम् ॥ ६० ॥

*ataḥ śocata mā yūyaṁ paraṁ cātmānam eva vā ka ātmā kaḥ paro vātra svīyaḥ pārakya eva vā
sva-parābhiniveśena vinājñānena dehinām*

अर्थ: अतः न दूसरों के लिए शोक करो, न अपने लिए। यहाँ वस्तुतः “अपना” कौन और “पराया” कौन, “स्वकीय” क्या और “परकीय” क्या — सिवाय देहधारियों के उस अज्ञानपूर्ण आग्रह के जो “अपने” तथा “पराए” की धारणा से चिपका रहता है? (SB 7.2.60)

नारद अध्याय का समापन उसके शान्त समाधान से करते हैं:

श्रीनारद उवाच
इति दैत्यपतेर्वाक्यं दितिराकर्ण्य सस्नुषा ।
पुत्रशोकं क्षणात्त्यक्त्वा तत्त्वे चित्तमधारयत् ॥ ६१ ॥

*śrī-nārada uvāca iti daitya-pater vākyaṁ ditir ākarṇya sasnuṣā putra-śokaṁ kṣaṇāt tyaktvā
tattve cittam adhārayat*

अर्थ: नारद ने कहा: दैत्यराज के इन वचनों को सुनकर दिति ने अपनी पुत्रवधू सहित तत्क्षण अपने पुत्र का शोक त्याग दिया और अपना चित्त तत्त्व (सत्य) में स्थिर कर लिया। (SB 7.2.61)



अविनाशी आत्मा पर हिरण्यकशिपु की शिक्षा से सान्त्वना पाकर दिति तथा उसकी विधवा पुत्रवधू अपना शोक त्याग देती हैं और अपना चित्त शाश्वत सत्य में स्थिर कर लेती हैं
(SB 7.2.61)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. आत्मा शाश्वत तथा मृत्यु से अछूती है। जो नष्ट होता है वह केवल देह है; अविनाशी आत्मा, शुद्ध तथा सर्वव्यापी, न कभी जन्मती है न मरती है (SB 7.2.22-24)।
2. शोक मिथ्या-पहचान से उत्पन्न होता है। दुःख तब उठता है जब हम नश्वर देह को शाश्वत आत्मा मान लेते हैं और “मैं” तथा “मेरा” से चिपकते हैं; ठीक-ठीक देखने पर कोई वास्तविक हानि नहीं है (SB 7.2.25-26, 60)।
3. सच्चे रक्षक केवल भगवान् हैं। न धन, न रक्षक उसे बचा सकते हैं जिसका समय आ गया, जबकि भगवान् द्वारा रक्षित आत्मा परित्यक्त होकर भी सुरक्षित है; वे गर्भ में भी हमारी रक्षा करते हैं (SB 7.2.38-40)।
4. शोक हमें अपनी ही मृत्यु के प्रति अन्धा कर देता है। जैसे नर पक्षी अपनी संगिनी का शोक करता रहा जबकि व्याध उस पर निशाना साध रहा था, वैसे ही जो शोक में खोया है वह भूल जाता है कि मृत्यु शोक करने वाले के लिए भी आ रही है (SB 7.2.50-57)।
5. सत्य अयोग्य के मुख से भी कहा जा सकता है। इतनी उदात्त शिक्षा एक असुर-राज के मुख से आना हमें स्मरण कराता है कि ज्ञान जहाँ भी मिले उसे ग्रहण करें, और केवल वक्ता के चरित्र से नहीं, अपितु वचनों के सत्य से तौलें (SB 7.2.20-61)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

यह भागवत के सबसे विचित्र तथा शिक्षाप्रद अध्यायों में से एक है, क्योंकि अविनाशी आत्मा का महान् सान्त्वनादायी ज्ञान उस व्यक्ति के मुख में रखा गया है जो युग का महान् अत्याचारी बनने वाला है। हिरण्यकशिपु सत्य को पूर्णता से कहता है — और उसे तनिक भी जीता नहीं। वह अपनी माता को समझा सकता है कि आत्मा कभी नहीं मरती, कि शोक भ्रम है, कि केवल भगवान् रक्षा करते हैं; और फिर मुड़कर संसार को जलाने और शीघ्र ही अपने ही पुत्र को मारने का आदेश देता है। यह अध्याय चुपचाप हमें चेताता है कि सत्य को जानना और उससे रूपान्तरित

होना दो अत्यन्त भिन्न बातें हैं। शास्त्र के वचनों में निपुण होना, दूसरों को सुन्दरता से सान्त्वना देना, और फिर भी अपने हृदय को अछूता रखना सम्भव है। बालक यमराज, और आने वाला बालक प्रह्लाद, हमें दूसरा मार्ग दिखाते हैं: वह ज्ञान जो जीवन के साथ एक हो गया है। हम प्रार्थना करें कि जो हम मन से समझते हैं, वह नीचे उतरकर हमारा स्वरूप बन जाए।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, जब कोई छोटी हानि आपको विचलित करे — कोई निराशा, कोई बिछोह, कोई ऐसी बात जो आपके मन के अनुरूप न हुई हो — प्रतिक्रिया से पहले रुकें और स्वयं को कोमलता से वह सत्य स्मरण कराएँ जिसे हिरण्यकशिपु ने जीने से अधिक अच्छा कहा था: *आत्मा शाश्वत है; केवल क्षणभंगुर रूप आते-जाते हैं।* एक क्षण शान्त बैठकर उस विक्षोभ को भगवान् को अर्पित करें, दोहराते हुए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” प्रार्थना करें कि यह सत्य केवल आपका ज्ञान न रहकर, भीतर से आपको स्थिर करने वाली वस्तु बन जाए।

उपसंहार

इस अध्याय की सम्पूर्ण शिक्षा एक ही सत्य पर टिकी है: जो शोक करता है और जिसके लिए शोक किया जाता है, दोनों वस्तुतः वही अविनाशी आत्मा हैं — और शोक तभी जड़ पकड़ता है जब यह सत्य विस्मृत हो जाता है। हिरण्यकशिपु इस सत्य को असाधारण स्पष्टता से कह सका, यद्यपि उसका अपना हृदय क्रोध तथा प्रतिशोध के अधीन ही बना रहा — यह हमें चेतावनी है कि केवल कह देना ही जीना नहीं है। हम दिति की शान्त शान्ति से यह गहन शिक्षा ग्रहण करें कि जो आत्मा को सचमुच शाश्वत जानता है, उसके लिए न कोई भय शेष रहता है, न कोई शोक।

श्रीमद्भागवत की दिव्य ज्ञान-ज्योति हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जाग्रत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, *श्रीमद्भागवत महापुराण* (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), सप्तम स्कन्ध, अध्याय 2, पृष्ठ 651–657।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पंडित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र की आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं तथा उनके अर्थ सार-रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद अथवा टीका की पुनरावृत्ति नहीं है। किसी भी प्रकाशक से सम्बद्धता अथवा समर्थन का कोई संकेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-7-chapter-2-hiranyakasipu- consoles-his-mothers-grief-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

